Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 7 | ISSUE : 2 | FEBRUARY 2021

अभंग गाथा का नाट्य संघर्ष

डॉक्टर सुभाष चंद्र डबास 'चौधरी' [1]

[1] **एसोसिएट प्रोफेसर हिंदी विभाग, राम लाल आनंद कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, बेनिटो जुआरेज रोड नई दिल्ली.**

ABSTRACT:

KEYWORDS:

आधुनिक हिंदी नाट्य साहित्य में नरेंद्र मोहन एक चर्चित नाम है। सींगधारी, कहे कबीर सुनो भाई साधो, हद हो गई यारों आदि नाटकों की भांति 'अभंग गाथा' उनका एक महत्वपूर्ण नाटक है। इस नाटक के केंद्र में मराठी के संत कवि तुकाराम हैं। तुकाराम एक विद्रोही संत है। शब्द ही उसके अस्त्र और ब्रहम हैं। उसके शब्द- अभंगों में जन चेतना पैदा करने की अनुपम शक्ति है ।उसके अभंग लोक संस्कृति ,लोक स्मृति और लोक चेतना का हिस्सा बन गए हैं, जिनके बलबूते पर वह निम्न वर्ग के साथ जन्मजात वर्ण बंधन और दासता के विरुद्ध डट कर खड़ा हुआ है। उसके गीत लोगों में जान फूंक देते हैं। उसकी भाषा ज्ञान और बाहरी भीतरी सुख संतापों की भाषा है ।गृहस्थी और वैराग्य संत तुकाराम के लिए एकसाथ जुड़े हुए हैं । गृहस्थी के जीवन संस्कार से ही जीवन चरित्र चमकता है । 'मानुष जाति एक है' इसीलिए सदियों की दासता अर्थात ब्राह्मणों द्वारा बनाए गए वर्ण व्यवस्था को तोड़ डालने के लिए तुकाराम और उसके अभंग सदैव क्रियाशील हैं। 'एक विशेष मानसिकता से एकरूपता साधते हुए इन अभंग-चरणों का प्रयोग करने से संपूर्ण नाटक में एक विशेष ऊंचाई प्राप्त की है।'[1]

नाटक के पहले अंक के तीसरे दृश्य में वर्ण व्यवस्था पर बहस इसी बात का प्रमाण है, जिसमें डींग ब्राह्मण, सींग ब्राह्मण और मम्बाजी से तुकाराम अकेला टक्कर ले रहा है। तुकाराम के शब्द-ब्रह्मास्त्र का लोहा मम्बाजी जैसे विरोधी भी स्वीकार करते हैं, क्योंकि उसके अभंग देश भर की लोक चेतना में रस बस गए हैं। हिंदी नाटक में विद्रोहात्मक स्वर और यथार्थ की अभिव्यक्ति के स्तर पर अनेक विसंगतियां और विकृतियों का चित्रण होता रहा है और साथ ही एक अर्थगत जीवन की आकांक्षा निरंतर बनी रही है, जो नाटक को समकालीन संदर्भों से जोड़ती है।[2]

नाट्य अनुभव विचार से पैदा होता है और विचार देशकाल वातावरण और परिवेश से । नाटककार अपने समकालीन यथार्थ, समस्याओं और अभाव में निरंतर संघर्षरत रहता है, जिसके फलस्वरूप उसकी नाट्य कृति विचार, विद्रोह और संघर्ष को गहन से गहनतम स्तर पर अनुस्यूत किए रहती है । अपने विचार सूत्रों और संघर्ष को जीवंत बनाकर बुनियादी मूल्यों में ढालते हुए कभी वह धर्म, दर्शन, अध्यात्म और संस्कृति की ओर उन्मुख होता है, तो कभी इतिहास, समाज, अर्थव्यवस्था और राजनीति की परतों को खोलने लगता है। कालिदास ने इतिहास में सामंतवाद का विरोध किया है, तो प्रसाद ने साम्राज्यवादी ताकतों के विरुद्ध राष्ट्रीय चेतना का उद्घोष किया है। भारतेंदु 'प्रबोध चंद्रोदय' में आध्यात्मिक दार्शनिक शैली के माध्यम से यथार्थ लाकर खड़ा कर देते हैं, तो नरेंद्र मोहन कबीर और तुकाराम जैसे संतों की जीवन दृष्टि और कृतित्व को नाट्यवृत्तियों एवं नाट्य स्थितियों में ढालकर एक ओर इतिहास, संस्कृति पक्ष को उद्घाटित करते हैं, तो दूसरी ओर युगीन यथार्थ, विचार, विद्रोह और संघर्ष को सम्यक एवं समीचीन प्रस्तुति देते हैं। नरेंद्र मोहन के नाटक सामयिक संगति के साथ ऐतिहासिक द्वंद्व का पुन: प्रकाशन करते हैं।[3]

'अभंग गाथा' की नाट्यवस्तु में सुविचार और संघर्ष एकांगी ने होकर बहुपक्षीय हैं। उसमें कई अर्थ लिपटे हुए हैं। धर्म के स्तर पर कुछ बिंदु हिंदू-मुस्लिम धार्मिक उन्माद की ओर संकेत करते हैं, जो मूल रूप से जाति आधारों- ब्राह्मण-चमार अर्थात सवर्ण-अवर्ण के विद्वेषपूर्ण ढंगोंऔर अत्याचारों को रेखांकित करते हैं। ब्राह्मणवाद के खिलाफ लोगों की यह खुली बगावत है। जमीदारों, साहूकारों के

खिलाफ किसान-विद्रोह भी इसी संघर्ष का एक अन्य पहलू है, जिसमें गणपत और माधव का कत्ल कर दिया जाता है, 'जो सभी को अन्य देते थे, उन्हीं का कत्ल '। नाटक में संवेदना पर यह गहरी चोट है। संत पर दो टूक संवाद सत्य, आत्म और ईश्वर को सच्चाई का वैचारिक आधार देकर धर्माडम्बरों को तोड़ता है। इसीलिए तुकाराम के लिए संत और सूली में विरोध नहीं है। यह संत समाज को विचार और उपदेश देता है। जीवन को एक दिशा प्रदान करता है और लोगों में जागृति पैदा करने और उन्हें संघर्ष के लिए कटिबद्ध करता है। संत और सूली में यही समानता है, दोनों ही निसंग हैं। इतिहास में चाणक्य जैसे उदाहरण भी हैं, जो संत भी हैं, राजनीतिज्ञ भी और निर्भय होने के कारण सूली के पर्याय भी।

तुकाराम इसीलिए दमन और कर्मकांड को डरे हुए लोगों की देन कहता है और डरा हुआ आदमी ज्ञान-विचार की जरा सी आँच भी सहन नहीं कर सकता । तुकाराम ने जाति -आधारों को तोड़ने के लिए देववाणी-वेद वाणी का तिरस्कार करके अपने अभंगों में लोकभाषा और भाषाराग को अपनाकर जनचेतना का शंखनाद किया है। नाटक में तुकाराम स्पष्ट वक्ता और हैवानियत से संघर्ष करते हुए इंसानियत का आदर्श प्रस्तुत करता है। उसके पारिवारिक और सामाजिक एवं आर्थिक संदर्भ में साथ ही ऐतिहासिक, धार्मिक, राजनीतिक वैषम्य जीवंत हो उठा है। 'मानव मूल्य और साहित्य' में डॉ धर्मवीर भारती ने बताया है कि 'साहित्यकार मानवीय गरिमा की प्रतिष्ठा और मानव मूल्य की खोज और उन्हें आत्मसात करने की प्रक्रिया द्वारा क्षण को भी अर्थवान बनाने का काम करता है।'[4]

फतेह खां युद्ध और हत्या के औचित्य प्रश्न से जूझ रहा है। उसकी यह प्रश्नाकुलता इतिहास एवं वर्तमान की घटनाओं में अंतर्भूत और छिपे हुए तथ्यों व सूत्रों को फोकस करती है, रेखांकित करती है। फतेह खा जीवन भर जुर्म के खिलाफ लड़ा । "लोगों को मारने के लिए जो हाथ बढे,मैंने उन्हें काट दिया"। फतेह खां के भीतर छिपी मानवीयता को जिजाई ने बहुत पहले पहचान लिया था। "फतेह खां ने बेशुमार कत्ल किए हैं,किंतु उसके भीतर एक मुलायम दिल है।" तुकाराम, जिजाई ने कौमी दंगों के दौरान फतेह खां को शरण देकर सहृदयता, भ्रातृ भावना एवं मानवीयता का परिचय दिया था, किंतु फतेह खां तुकाराम के बदले अपनी जान देकर महान त्याग, सहिष्णुता और बलिदान की प्रतिमूर्ति बन गया है, जो दर्शकों के चित्त को निरंतर बांधे रहता है और अंत में एक अमिट छाप छोड़ जाता है। फतेह खांऔर उसका भूत नाटक में एक सजीव पात्र है। उसके सिर में रिश्ता हुआ जख्म है। वह अपने जीवन की कहानी अपने ही खून से लिख रहा है। उसके भीतर एक हारा हुआ सिपहसालार बार-बार सिर उठाता है। जीवन भर बुराइयों से लड़ने वाले ऐसे योद्धा को भला कौन मार सकता है। 'बुर्जी पर सुरजी पर किला' -की अनुगूंज उसके त्याग, बलिदान और हिंदू मुस्लिम के भाईचारे को चरितार्थ करती है। नाटक की भूमिका में नाटककार ने फतेह खां पर एक अच्छी सी टिप्पणी दी है, जो इतिहास, वर्तमान और समाज, भूगोल को समन्वित करके देखने की सृजनात्मक दृष्टि का ही प्रमाण है।" मैंने तभी फतेह खां के देहू गांव आने और तुकाराम से मिलने की कल्पना की है। इसे तुकाराम की मनोस्थितियों और रुझानों को लोकेट करने में मदद मिली है।" इस तरह नरेंद्र मोहन इतिहासपरक तथ्यों, घटनाओं ,पात्रों और कल्पना के योग से यथार्थ को खोलते-फैलाते हैं। 'नाटकीयता के द्वारा हमारी सभी प्रकार की स्वप्न कल्पनाएं दृष्टि-कल्पना के रूप में दृष्टिगोचर होती हैं । जिस प्रकार हम किसी अभिनय का क्रमश: प्रदर्शन करते हैं, उसी प्रकार स्वप्न में भी हम सभी मूर्त या अमूर्त विषयों के चित्रित दृश्य देखते हैं।'[5]

शेख मोहम्मद भी नाटक का एक महत्वपूर्ण पत्र है, जो धर्म व जाति की संकीर्णता से ऊपर उठकर मानवीय संवेदना को झकझोरता है। नाटक के पहले अंक के चौथे दृश्य का प्रारंभ शेख मोहम्मद तुकाराम के संवादों से होता है, जिनमें शेख मोहम्मद के चिंतन, मुद्रा और मानवीय दृष्टि की गहराई झलकती है और दूसरी तरफ तुकाराम की बदहाली, सूनापन, निराशा, टूटन, अकेलापन और खामोशी अभिव्यंजित है। तुकाराम 'सन्नाटे और समाधि' के बीच जड़ता की स्थिति में आ गया है । वह घर में नहीं, कुएं में पड़ा है और अंधेरी चट्टानों से टकरा- टकरा कर माथा फोड़ रहा है। बेरहम दुनिया उसे जीने नहीं देती-"बीच में एक बेरहम दुनिया..... मेरे विरुद्ध खड़ी.... मेरे होने को नोचती-खसोटती ,हर पल मुझे झुकाती, गिराती, गुलाम बनाती, मेरे अंतर को झकझोरती, नंगा करती...."। तुकाराम के टूटते मन को ढाढस बँधाने, बदहाली के आलम से बाहर लाने और प्रेरित करने का बीड़ा सर्वप्रथम शेख मोहम्मद ने उठाया है। "क्यों भूलते हो, इसी दुनिया में से तुमने सर ऊंचा किया है, साथियों को उठाया है, उन्हें लड़ना सिखाया है "। ऐसी ही एक नई दुनिया खड़ी करने का काम कबीर ने किया है। शेख मोहम्मद और तुकाराम के ये छोटे-छोटे संवाद अत्यधिक सशक्त, सारगर्भित, अभिव्यंजक, पैने, गतिशील और वातावरण को जीवंत बना रहे हैं। दूसरे अंक के तीसरे दृश्य में शेख मोहम्मद का एकालापऔर तुकाराम संताजी तेली के साथ संवाद हिंसा, बर्बादी, मारकाट, मौत का सन्नाटा, बदबू, गणपत और माधव का कत्ल, टूटी हुई वीणा, दिल्ली से देहू तक जंगली जानवर के शैतानी पंजों, मम्बा जी के पेशेवर कुत्तों और अन्यायी राजा के कटु यथार्थ को क्रमश: उद्घाटित करते हैं। ऐसे बीभत्स दृश्यों में नाट्य संवेदना अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गई है। मौत के तांडव और अमानवीयता के बीच मार्मिकता की चरम स्थिति कही जा सकती है, जहाँ सोए हुए बच्चों का भी कत्ल कर दिया गया है। 'अभंग बनाने से क्या होगा'-की प्रश्नाकुलता नाटक

में यथास्थिति को तोड़कर अन्याय से लड़ने के लिए कटिबद्ध करती है। यथार्थ की मार्मिकता और बेचैनी नाटय वस्तु एवं नाट्य स्थितियों को गहराती है। ऐसी स्थिति में भावों का स्थानांतरण होता है, जिसमें "घृणा प्रेम में बदल जाती है और प्रेम घृणा में।"[6]

इस नाटक में पाशविकता और सृजनात्मक शक्ति की आमने-सामने की टक्कर है। एक ओर मम्बाजी, रामेश्वरम, दामोदर सदाशिव और तानाजी हैं, तो दूसरी ओर तुकाराम, जिजाई, शेख मोहम्मद, फतेह खां, संताजी तेली, गंगाराम मवाल और वारकरी -1,2 हैं।

संघर्ष और टकराहट के बढ़ने के साथ-साथ यथार्थ की परतें खुलती जाती हैं और नाटक अपने बहुआयामी प्रभाव में दर्शकों को डुबो लेता है। वारकरी -1,2 पात्र भी अपने वैशिष्ट्य के कारण दर्शकों के भीतर समा जाते हैं। जीवन- मृत्यु के खेल को जीवटता से देखते हैं और नाट्यवस्तु के नवीन सूत्रों को अत्यंत रोचकता, नाटकीयता और अर्थ पूर्ण ढंग से प्रस्तुत करते हैं। तुकाराम का दर्शन भी जैसे इन्हीं के माध्यम से खुलने लगता है और 'बुर्जी पर सुरजी पर किला' पंक्ति की अनुगूंज दर्शकों की सोई हुई चेतना को जगा कर विद्रोह एवं संघर्ष के लिए आवाहन करने लगती है। पागल का चरित्र नाटक में आद्यंत छाया रहता है। यही नहीं, नरेंद्र मोहन के दूसरे नाटकों और लंबी कविताओं में भी यही चरित्र विद्रोह, संघर्ष और यथार्थ के विभिन्न पक्षों को खोलकर सामने रखने के साथ ही सर्जन का उत्प्रेरक रहा है । नाटक में पागल का यह बिंब-चरित्र अत्यंत सशक्त है, जो दौलताबाद की कैद से भागकर देहू गाँव में पहुंच गया है। फतेह खां का कथन- "क्यों इलहाम क्या शायरों को ही होता है, पागलों को नहीं ", शायर और पागल की मनोवैज्ञानिक समानताओं और उर्जा को ही इंगित करता है। पागल का मानवीय पक्ष लोगों के मन को झकझोर देता है क्योंकि वह शूद्र स्वार्थों से ऊपर उठा हुआ है और त्याग एवं प्राण- उत्सर्ग के लिए तत्पर है। तभी तो एक पागल (फतेह खां) दूसरे पागल (तुकाराम) को बचाने के लिए अपनी जान दे देता है। नाटक में मानवीय संवेदना की यह चरम स्थिति है। इसके साथ ही हम मम्बाजी जैसे नीच एवं पाशविक मनोवृति के चरित्र की दुर्दशा, उसका पागलपन और आत्मस्वीकृति 'अभंगगाथा' नाटक का अर्थ विस्तार है। तुकाराम के अभंगों की शक्ति भी यही है और नाटक का परम उद्देश्य भी, जिनके प्रभाव में आकर मम्बाजी की दुष्ट प्रवृत्तियां भस्म होने लगती हैं। गिरती दीवारों की अबूझ लिपि में उसे तुकाराम के अक्षर, वही शब्द- संदेश और प्रेम के ढाई आखर उसकी मर्जी के खिलाफ आंखों के सामने तैरने लगते हैं। आत्मविगलित होकर उसे सत्य एवं मानवीयता का आभास होता है, 'उसने मुझे जिंदगी दी, मैंने उसे मौत'। एक दुष्ट चरित्र के अंतः करण में तमस और सदभावनाओं का यह कंट्रास्ट नाटक को दिव्य प्रभावी बना देता है।

नाटक में राजनीतिक पक्ष के अलावा पारिवारिक, सामाजिक और राजनीतिक -आर्थिक पहलू बड़े ही महत्वपूर्ण है। अन्न जीवन की मूलभूत आवश्यकता है। चारों ओर मौत की छाया विकराल बनी हुई है ।मम्बाजी जैसे साहूकार, जमाखोर स्वार्थवश अनाज के ढेर पर कुंडली मारे बैठे हैं। लेकिन तुकाराम परोपकारवश अपने अनाज की बोरी लुटा देता है। इसीलिए जिजाई कहती है- "पागल से लुटाते रहे अन्न।अब रुकमा मर रही है भूख से बेहाल, बच्चा प्यास में इधर निढाल...." जिजाई और तुकाराम के संवाद समाज में व्याप्त शोषण चक्र और जमीदारी, साहूकारी प्रथा को तोड़ने की ललक को जग जाहिर करते हैं। गणपत, माधव को 'मरियल से किसान' कहकर उनके जीवन के कटु यथार्थ को सहानुभूति पूर्वक चित्रित किया गया है। साथ ही मम्बाजी, पाटिल जैसे जमीदारों, शोषकों व आततायियों को ललकार और फटकार दी गई है। जिजाई निडर, साहसी औरत है, जो मम्बाजी को ढपोरशंख कहकर ललकारती है। दुकान चलाती है और पति की प्रेरणा भी बनती है- "जो ठीक लगता है करती हूं और जब तक हड्डियों में जान है, करती रहूंगी "। जिजाई और भागीरथी के वार्तालाप में वर्तमान जीवन की विसंगतियां और सत्यकथा गहराते हुए रेखांकित होती है । पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक संदर्भ एक साथ खुलने लगते हैं।

तुकाराम के पारिवारिक एवं व्यक्तिगत जीवन के नाट्य- अनुभव भी जीवन की विसंगतियों, जटिलताओं को तल्खी से पेश करते हैं। अभंग से घर का सुखद साहचर्य भंग होता है और समाज में विद्रोह, दबे हुए लोगों में जागृति पैदा होती है। अस्मिता की लड़ाई में जिजाई अंत:संघर्ष की स्थिति में है, तो दूसरी ओर बेरहम दुनिया तुकाराम के खिलाफ खड़ी है। 'अभंग भाऊ गाता है, कोड़े मुझे लगते हैं', कान्हा जी की यह उक्ति पारिवारिक विघटन की अभिसूचक है। समाज के सबल- सवर्ण वर्ग के विरोध एवं पारिवारिक तिरस्कार के फलस्वरूप तुकाराम का अंतर संघर्ष व तनाव चरम स्थिति में पहुंचकर उसे निराशा और हताशा के अंधे कुएं में धकेल देते हैं। जीवन भर के विरोध, तनाव को सहते और कर्म पथ पर बढ़ते हुए तुकाराम आत्मालोचन की प्रक्रिया में नाटकीय एकलाल का सहारा लेता है। नाटककार ने एकालाप को नाट्य शैली में ढालकर सार्थक एवं साभिप्राय प्रयोग किया है। 'अभंगगाथा ' में तुकाराम फतेह खां और शेख मोहम्मद पात्र ही नाटकीय एकालाप प्रक्रिया से गुजरे हैं ,जिसमें एक ओर उनकी मन: स्थिति, तनाव-विरोधों से भरी जिंदगी, असंतोष, पीड़ा, मुख- मुद्राओं और शारीरिक क्रियाओं के साथ समग्र जीवन चरित्र का उद्घाटन होता है तो दूसरी ओर मूल कथ्य या नाट्यवस्तु एवं उद्देश्य के साथ सजीव वातावरण की सृष्टि होती है । इसलिए यह नाटकीय एकालाप नाटक की कमजोरी

न बनकर उसकी प्रभावान्विति व एकान्विति के वाहक बन गए हैं। 'समसामयिक संदर्भ में रंगमंच और नाटक की चेतना का उदय अनेक सर्जनात्मक संभावनाओं के साथ हुआ है। आधुनिक नाटक परंपरा व प्रयोग, समसामयिकता और आधुनिकता, विसंगति और विडंबना के सार्थक प्रयोगों से गुजरते हुए एक व्यापक और उदारतापूर्ण धरातल तक पहुंचा है।'[7] कुल मिलाकर यह नाटक अपनी नाट्यवस्तु और संवेदना- संघर्ष के द्वारा इतिहास -वर्तमान, राजनीति और समाज, संघर्ष और विद्रोह मानवीयता और यथार्थ को एक साथ उद्घाटित कर पाने में समर्थ है।

REFERENCES

1. नया परिदृश्य :नरेंद्र मोहन के नाटक, पृ 115
2. समकालीन हिंदी नाटक और रंगमंच, पृ 147
3. नरेंद्र मोहन का नाट्यकर्म,पृ 122
4. मानव मूल्य और साहित्य,पृ14
5. कला के दार्शनिक तत्व,पृ 276
6. आधुनिक मनोविज्ञान और हिंदी साहित्य,पृ 77
7. स्नातक, हिंदी साहित्य का इतिहास,पृ 387